SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

वाल्मीकि रामायण में वर्णित राजनीतिक व्यवस्था और शासन प्रणाली

कुमारी निकिता, शोधच्छात्रा, वेद विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
कुमारी निकिता, शोधच्छात्रा
E-mail : kumariankit7070@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 12/05/2025
Revised on : 15/07/2025
Accepted on : 24/07/2025
Overall Similarity : 00% on 16/07/2025

शोध सार

वाल्मीकि रामायण केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं बल्कि प्राचीन भारतीय समाज की राजनीतिक और सैन्य सोच का सजीव प्रतिबिंब है। इस महाकाव्य में वर्णित शासन प्रणाली , प्रशासनिक ढांचा और युद्ध नीति परिपक्व और नैतिक दृष्टिकोण से युक्त थी। रामायण में राजा को धर्म और न्याय का पालक माना गया है। शासन व्यवस्था राजतंत्र पर आधारित थी, किन्तु राजा को प्रजा की भलाई, सुरक्षा और सुख–शांति के लिए उत्तरदायी माना गया था। रामायण में "राजधर्म" की अवधारणा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, जो शासक को नैतिक मूल्यों और सामाजिक न्याय के साथ शासन करने की प्रेरणा देती है। मंत्रिमंडल, न्यायालय और जनसुनवाई जैसे व्यवस्थाएं शासन को व्यवस्थित बनाती थीं। उस समय की प्रशासनिक व्यवस्था बहुस्तरीय थी। विभिन्न विभागों के प्रमुख नियुक्त किए जाते थे जो शासन के अलग–अलग कार्यों की देख–रेख करते थे , जैसे – कोषागार, सुरक्षा, कृषि, जल, प्रबंधन और न्याय। राजा नियमित रूप से मंत्रियों से परामर्श करता था और गुप्तचरों द्वारा राज्य की स्थिति का आकलन करता था।

मुख्य शब्द

रामायण, राजनीतिक, प्रशासनिक तंत्र, न्याय प्रणाली, लोक कल्याण, युद्ध.

भूमिका

प्राचीन भारतीय साहित्य की परंपरा में रामायण एक ऐसा महाकाव्य है, जो न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से महत्त्व रखता है, बल्कि उसमें तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, और राजनीतिक जीवन का भी अत्यंत गूढ़ और यथार्थ चित्रण मिलता है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित यह ग्रंथ आदर्श मानव व्यवहार, मर्यादा, और धर्म की व्याख्या करता है, जिसमें राजनीति भी एक

महत्त्वपूर्ण पक्ष के रूप में उभर कर सामने आता है। रामायण में वर्णित राजनीतिक व्यवस्था केवल राजाओं और उनके शासन की कथा नहीं है, बल्कि यह उस काल के संपूर्ण राजनैतिक सिद्धांतों, राज्य की संरचना, प्रशासनिक तंत्र, न्याय–प्रणाली, लोक–कल्याण की अवधारणा और राजा के कर्तव्यों का भी स्पष्ट विवरण प्रस्तुत करती है। अयोध्या में स्थापित शासन प्रणाली को ष्रामराज्यष कहा गया, जो भारतीय विचारधारा में आदर्श राज्य व्यवस्था का प्रतीक बन गया है। यह राज्य न केवल शक्ति और प्रभाव का केंद्र था, बल्कि उसमें नीतिपूर्ण, धर्मपरायण और प्रजावत्सल शासन की मूल भावना विद्यमान थी। इस प्रकार, रामायण में वर्णित राजनीतिक व्यवस्था न केवल ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि यह आज की लोकतांत्रिक और प्रशासनिक प्रणालियों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बन सकती है। इस लेख में हम इस प्राचीन ग्रंथ के माध्यम से उस समय की राजनीति, शासन प्रणाली, न्याय व्यवस्था, प्रशासनिक ढांचे, और लोक कल्याणकारी नीतियों का विश्लेषण करेंगे।

राज्य से संबंधित नीतियों को राजनीति शब्द से अभिहित किया गया है। इसमें दो पद है – राज्य और नीति। राज्य ''राजन्'' + ''यत्'' प्रत्यय से निर्मित और नीति ''नी'' धातु + ''क्तिन्'' प्रत्यय लगकर बना है जिसका अर्थ है ''राज्य से संबंधित उचित निर्देशन''। राजनीति के चार तत्व बताए गए हैं – भूमि, जनता, सरकार और संप्रभुता। नीति राज्य को स्थिर बनाए रखने और उसके काम–काज को सही तरह से चलाने का मार्ग प्रशस्त करती है। यह नीति ही राजकार्यों के विषय में उचित और अनुचित का ज्ञान कराती है। यदि नीतियों का पालन नहीं किया जायेगा तो राज्य का पतन और यदि नीतियों का पालन किया जाएगा तो राज्य का स्थायित्व होना दृढ़ हो जाता है इसलिए नीति का कार्य है राज्य की ताकत को नियंत्रित करना और उस पर अधिकार बनाना होता है।

राज्य के सप्तांगों के अन्तर्गत राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड और मित्र आते हैंः

1. **राजाः** वाल्मीकि रामायण में राजा को ईश्वर का अंग बताया गया है। राजा के बिना राज्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। राजा को केंद्र में रखा गया है, जिस राज्य में राजा नहीं होता है वह राज्य शीघ्र ही ध्वंस हो जाता है। राम के वनवास के उपरांत राजा दशरथ की मृत्यु हो जाने पर अनेक ऋषि मुनि मिलकर वशिष्ट के पास जाते हैं और राज्य में राजा की आवश्यकता को बताते हैं।[1]

   राजा विहीन राज्य में पूर्ण रूप से अराजकता फैल जाती है जैसे जल के बिना नदियां, घास के बिना वन और ग्वालों के बिना गौओं की शोभा नहीं होती, ठीक वैसे ही राजा के बिना राज्य शोभायित नहीं होता। वाल्मीकि रामायण के अनुसार राजा का पद कुलपरंपरा से प्राप्त होता था। सीताराम के विवाह के समय राजा जनक अपने वंश का[2] एवं ऋषि वशिष्ठ इच्छवाकु वंश का[3] जो परिचय देते हैं उससे साफ स्पष्ट हो जाता है कि उस समय का राजपद आनुवांशिक था। राजा धर्मज्ञ, सत्य, शुद्धता, जितेंद्रिय, शुभचिंतक, संयमित एवं पराक्रमी जैसे गुणों से युक्त होना चाहिए।[4] महर्षि वाल्मीकि जी ने श्रीराम को ही युवराज बनाने के कारण राजोपयुक्त गुणों की एक विस्तृत श्रृंखला ही प्रस्तुत कर दी।[5]

2. **अमात्यः** राज्य को सुचारू ढंग से संचालन एवं मंत्रणा में राजा का सहायक व्यक्ति मंत्री ही होता है। मंत्री को आमत्य और सचिव पद से अभिहित किया गया है। रामायण का एक संपूर्ण सर्ग मंत्रीगुणों को ही बताता है। एक सच्चा मंत्री वही होता है जो शास्त्रज्ञ, विनययुक्त, राजकार्यों में सावधान, व्यवहार कुशल, गुप्तचरी व्यवस्था में निपुण, कोश संचय एवं सेना संग्रहण में तत्पर और राजा का शुभचिंतक होता है। इसके अतिरिक्त अरण्य कांड में भी मंत्री के लक्षणों के बारे में बताया गया है।[6] रामायण में युद्ध प्रारंभ होने से पहले विभीषण ने माता सीता को लौटा देने का परामर्श देते हुए एक उत्तम मंत्री होने का परिचय दिया है। स्वपक्ष तथा शत्रुपक्ष के सैन्य बल को देख, हानि एवं वृद्धि को अच्छे से समझ कर जो अपने राजा को उचित और हितकारी मंत्रणा देता है वही वास्तविक मंत्री है – ''परस्य वीर्यं स्वबलं च बुद्धवा स्थानं क्षयं चौव तथैव वृद्धिम्। तथा स्वपक्षेऽप्यनुमृश्य बुद्धया वदेत् क्षमं स्वामिहितं स मन्त्री।।''[7] मन्त्री का यह दायित्व है कि वह स्वामिहित और राज्यहित को ध्यान में रखते हुए राजा को गलत मार्ग में जाने से रोके।[8] राजा की जीत भी तभी होती है जब एक मंत्री उत्तम मंत्रणा करे[9] और उत्तम मंत्रणा भी मंत्री तभी कर पाएगा जब वह शास्त्रों का अध्ययन

किया हो और वह मंत्रणा को गुप्त रखे।

मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव।
सुसंवृतो मन्त्रिधुरैरमात्यैः शास्त्रकोविदैः ।।[10]

जिन राजाओं का तनिक भी वाल्मीकि रामायण में वर्णन आया है उनके मंत्रिमंडल का भी वर्णन हुआ है। इच्छवाकुवंशी राजा दशरथ के मंत्रिमंडल में आठ प्रमुख मंत्री थे, जो सभी आचार–विचार युक्त थे और सदा राजकार्यों में लगे रहते थे।[11] राजा अपने मंत्रिमंडल से परामर्श लेकर ही कोई कार्य करना आरंभ करते थे।

3. **जनपदः** जनपद को वर्तमान समय में जिला कहा जाता है। जनपद में निवास करने वाले को जानपद कहते है। कुटुंब, ग्राम, नैगम, श्रेणी, गण, संघ और जनपद रामायण काल की मुख्य संस्थाएं थीं जिनके द्वारा स्थानीय विषयों का शासन प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा होता था। इन संस्थाओं के कारण राजा के प्रधीन शासन कार्यों का क्षेत्र परिमित हो जाता था। यह संस्थाएं अपने प्रतिनिधियों को सभा में भेजकर इनके द्वारा राजा के स्वेच्छाचार पर प्रतिबंध लगाती थी । अतः यह संस्थाएं उस युग में जनतंत्रवाद के रक्षक के रूप में थी जिनके द्वारा राज्यों की स्थापना पर विकास में बड़ी सहायता मिलती है। दशरथजी के परिषद् में राम को राजा के पद पर वरण करने का निश्चय हुआ था, उसमें पौर और जानपद सभाओं के सदस्य भी उपस्थित थे – ''पौरजानपदाकीर्णं ब्राह्मणैरुपशोभितम्''। सुमंत्र ने राजा दशरथ के पास जाकर यह सूचना दी थी कि रामचंद्र के अभिषेक की समस्त सामग्री के साथ नैगम,पौर तथा जानपद के लोग विनम्रता पूर्वक आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं:

उपतिष्ठत रामस्य समग्रमभिषेचनम्।
पौरजानपदाश्चापि नैगमश्च कृताञ्जलि।।[12]

उसके पश्चात् जब राम को वनगमन संबंधी आज्ञा मिल जाती है और राम यह समाचार सीता को सुनाने जाते हैं तो सीता राम को उदास देखकर कहती है क्या समस्त प्रजा, श्रेणी के मुखिया, पौर तथा जानपद तुम्हारे सहायक नहीं है?

न त्वां प्रकृतयः सर्वा श्रेणीमुख्याश्च भूषिताः।
अनुव्रजितुमिच्छन्ति पौरजानपदास्तथा।।[13]

रामायण के अनुसार जब कोशल जनपद के राजा दशरथ ने पुराने राजाओं की परम्परा का अनुसरण कर राम को अपना उत्तराधिकारी नियत करना चाहा,तो उन्होंने एक परिषद् बुलाई जिसमें पौर–जनपद जन भी सम्मिलित हुए। परिषद् में दशरथ के प्रस्ताव का उत्साहपूर्वक स्वागत किया गया और पौर–जनपदों सहित परिषद् के सदस्यों ने दशरथ के प्रस्ताव का समर्थन किया।

4. **दुर्गः** रामायण के अनुसार राज्य की सुरक्षा का सेना के अतिरिक्त अन्य दूसरा साधन दुर्ग व्यवस्था थी। दुर्ग दुर्धर्ष तथा अजेय होते थे तथा सुरक्षात्मक सुविधाओं से युक्त होते थे। रामायण में राज्य की राजधानी या मुख्य नगर को ही दुर्ग कहा गया है।[4] रामायण में अयोध्या,किष्किन्धा और लंका के दुर्गों का विस्तार से वर्णन किया गया है। रामायण में चार भेद दुर्गों के बताए गए हैं – नदिय दुर्ग,पार्वत दुर्ग, वन्य दुर्ग तथा कृत्रिम दुर्ग।[15] कृत्रिम दुर्ग में विशाल द्वार होते थे। इन द्वारों में दृढ़ कपाट (फाटक) होते थे। कपाटों को बन्द करने के लिए बड़े–बड़े परिघ होते थे।[16] द्वारों पर रक्षार्थ यन्त्रों का प्रबंध रहता था[17] एवं योद्धागण भी द्वारों पर रक्षार्थ नियुक्त किए जाते थे।[18] ये दुर्ग शत्रु को फंसाने वाले जालों से युक्त होते थे।[19] ये प्राकार या परकोटे शत्रु द्वारा दुर्धर्ष होते थे। कृत्रिम दुर्ग या प्राकार के चारों ओर भयावह,अगाध, जलयुक्त परिखा रहती थी। इन जलयुक्त परिखाओं में ''मगर'' और ''मत्स्य'' रहते थे। परिखा या खाई पर पुल बने रहते थे जिन पर यन्त्र संलग्न रहते थे एवं शत्रुसेना उन्हें पार करने में असमर्थ रहती थी।[20] दुर्गों या किलों को धान्य, आयुधों एवं जल यन्त्रों, शिल्पियों और धनुर्धर योद्धाओं से युक्त रखा जाता था । रामायणानुसार दुर्गों में कूटागार एवं चौत्य भी निर्मित होते थे।[21] ये कूटागार और चौत्य सुरक्षार्थ होते थे।

5. **कोषः** कोष पद राज्य– भंडार का पर्याय है। यथा – रत्न, स्वर्ण, वस्त्र और अन्य मुद्रा द्रव्य इत्यादि कोष

के अंतर्गत गिने जाते हैं। प्राचीन काल में राज्य की सुरक्षा, व्यवस्था और उन्नति के लिए धन की आवश्यकता सर्वोपरि मानी जाती थी। राज्य की स्थिरता और समृद्धि के लिए ''कोष'' की भूमिका अत्यंत महत्त्व पूर्ण होती थी। धर्म, अर्थ और काम ये तीन पुरुषार्थों में अर्थ की प्रधानता है। अर्थ को धर्म और काम का मूल बताया गया है।[22] वाल्मीकि रामायण के अनुसार राजा धर्म,अर्थ और काम की समानरूप से प्राप्ति का प्रयास करता था।[23] राज्य हित के लिए अर्थ संचय का रामायण में विभिन्न स्थानों पर वर्णन आया है। इक्ष्वाकु कुल राजा दशरथ के अमात्य ''कोष'' के संग्रह में सदा तत्पर रहते थे।[24] धन का अत्यधिक महत्त्व होने के कारण उस समय के राज्यों में राज्य की आय उसके खर्च से अधिक रखी जाती थी।[25] लेकिन यह बात भी स्पष्ट थी कि किसी भी प्रजा से बलात् या पीड़ा देकर धन का संग्रह कर कोष की वृद्धि नहीं की जाती थीं।[26] कोष के स्रोत और उसके संचित करने के उपायों पर विशेष बल दिया गया है। रामायण के अनुसार कोष को बढ़ाने के लिए निम्नलिखित स्रोत बताये गये हैं[27] – १) प्रजा से कर – यह कोष का मुख्य स्रोत था। २) दुश्मन राज्यों से कर – विजित राज्यों से कर प्राप्त होता था। ३) मित्र राज्यों से भेंट – मित्र राष्ट्रों से सहयोग रूप में धन मिलता था। ४) व्यापारिक गतिविधियों से लाभ – जैसे यज्ञ या अन्य अवसरों पर दान और उपहार। ५) अपराधियों से प्राप्त दंड रूप में अर्थ। ६) कृषिकार्य और सिंचाई से प्राप्त कर। ७) राज्य के वनों एवं खानों से प्राप्त धन। रामायण में बताया गया है कि राज्य का कोष किसी एक वर्ग से नहीं, बल्कि पूरे समाज और राजनैतिक तंत्र से जुड़ा होता है। राजा के धर्म का यह भी अंग था कि वह कोष को न केवल संचित करे, बल्कि उचित समय पर उसका सदुपयोग भी करे। गलत कार्यों में राजा को धन खर्च करने का अधिकार नहीं था।[28]

6. **दण्ड/सेना:** वाल्मीकि रामायण में कहा गया है कि यदि राजा दंड न दे तो प्रजा का अनुशासन समाप्त हो जाएगा,अराजकता फैल जाएगी और अन्याय का बोलबाला होगा इसलिए राजा का यह कर्तव्य है कि वह अपराधी को उसके अपराध के अनुसार दंड दे ताकि समाज में न्याय और भय का संतुलन बना रहे। शतपथ ब्राह्मण में दंड का प्रयोग शक्ति के अर्थ में है। उसमें दंड को अपराध की निवृत्ति के लिए, धर्म की रक्षा के लिए और धर्म के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक कहा गया है तथा उसे राजा से संबंधित कहा गया है।[29] दण्ड के दो रूप हैं – आंतरिक तथा बाह्य। राज्य में होने वाले अपराधों को रोकने एवं उनके शमन के लिए प्रयुक्त दंड आंतरिक दंड है। किसी राज्य पर अन्य राज्यों द्वारा किए गए आक्रमण की निवृत्ति के लिए बाह्य दंड का आश्रय लिया जाता है। रामायण में जीवन, संपत्ति, धर्म तथा राज्य की रक्षा के लिए दंड की आवश्यकता बताई गई है।[30] शासन व्यवस्था बनाने के लिए दंड श्रेष्ठतम साधन है। दंड नीति का विशेष रूप से अयोध्या कांड और उत्तरकांड में मिलता है, जहां राजा न्याय और अनुशासन को बनाए रखने के लिए दंड का प्रयोग करते हैं। राम स्वयं न्याय और दंड के पालन में आदर्श माने जाते हैं – जैसे सीता की अग्नि परीक्षा या शंबूक वध का प्रसंग।

7. **मित्र:** मित्र का अर्थ केवल व्यक्तिगत मित्र से नहीं, बल्कि राजनीति सहयोगी, संकट में सहायता देने वाले और धर्म तथा नीति में समभाव रखने वाला सहयोगी राजा भी होता है। मित्र के मुख्य रूप से दो भेद हैं – १) महान् मित्र २) अद्वैध्य मित्र। बड़े प्रयत्न से सहायता करने वाला महान मित्र होता है। अद्वैध्य मित्र वह है जो मित्र के साथ–साथ रहकर सुख–दुरूख का अनुभव करे। रामायण के अनुसार सुग्रीव और श्रीराम के बीच मित्रता राजनीतिक और नैतिक गठबंधन पर आधारित है। राम ने बालि वध कर सुग्रीव को राज्य दिलाया और बदले में सुग्रीव ने रावण के विरुद्ध युद्ध में सहायता की। यह उदाहरण महान मित्र और अद्वैध्य मित्र दोनों का उदाहरण है। विभीषण ने जब रावण की अधार्मिक नीति का विरोध किया तो राम ने उसे राजनीतिक शरण दी और मित्र बनाया। रामायण में मित्र का कार्य केवल संकट में साथ देना नहीं है, बल्कि नीति और धर्म में राजा का सहायक भी होता है, राज्य की रक्षा और निर्णयों में सहयोग करना है, शत्रुओं के विरुद्ध समर्थन करना है, और आवश्यकता पड़ने पर राजा के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। रामायण का आदर्श मित्र वह है जो नीति, धर्म और आत्मीयता तीनों में राजा का सहयोगी हो।

रामायण में युद्ध का प्रयोजन केवल बाह्य विजय या प्रतिशोध नहीं है,बल्कि इसका आधार धर्म की स्थापना, अन्याय का नाश और नीति का पालन था। युद्ध को रामायण में धार्मिक, नैतिक और राजनीतिक उद्देश्यों से जोड़ा गया है। रावण केवल सीता–हरण करने वाला नहीं, बल्कि अहंकार, अधर्म आदि का प्रतीक था। राम उसके विरुद्ध युद्ध कर धर्म और मर्यादा की रक्षा करते हैं।

युद्धमंत्रणा से तात्पर्य है युद्ध से पहले ही रणनीति, योजना और तैयारी करना अर्थात् अपनी शक्तियों और कमजोरियों का मूल्यांकन करना, शत्रुओं की ताकत, रणनीति का अध्ययन करना और विजय प्राप्त करने के लिए सबसे उपयुक्त तरीके का चयन करना। युद्ध मंत्रणा में समय, स्थान और मंत्रियों की संख्या को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। आदिकाव्य रामायण में ऐसी अनेक मंत्रणाओं का उल्लेख हुआ है। जब भगवान श्री राम माता सीता की खोज में दक्षिण की ओर वानर सेना सहित जा रहे थे। कुछ दूर पर अत्यधिक विशाल समुद्र मिला जिसको लांघ कर जा पाना मुश्किल पड़ रहा था तभी भगवान् श्री राम ने वानर सेना को समुद्रतट पर ठहरने के लिए कहा और राम ने समुद्रालंघन के उपाय पर विचार करने के लिए मंत्रणा करना आवश्यक समझा था – "सम्प्राप्तौ मंत्रकालो नरू सागरस्येह लंघने।"[31]

वाल्मीकि रामायण में युद्ध की नैतिकता तथा सैनिक मर्यादा का भी विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। युद्ध का अर्थ है संहार परंतु डर से छिपे हुए जो व्यक्ति युद्ध नहीं कर रहा है, शत्रुपक्ष का हाथ जोड़ रहा है, शरण में आ गया हो, युद्ध भूमि को छोड़कर भाग रहा हो या जो पागल हो वैसे व्यक्ति को युद्ध में मारने से रोका गया थाः

अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्रांजलिं शरणागतम्।
पलायमानं मत्तं वा न हन्तुत्वमिहार्हसि।।

आधुनिक सन्दर्भों में रामायणकालीन राजनीति

रामायण में केवल राजतन्त्राधीन शासन प्रणाली का ही वर्णन है, तथापि उसमें राजतन्त्र वंशानुक्रमिक होने पर भी शासन में जनतान्त्रिक भावना का समन्वय प्रमुख रूप से किया गया है। इस प्रकार तत्कालीन राजतन्त्र पूर्ण रूप से संस्थित राजतन्त्र था। उस समय जनतान्त्रिक भावन प्रधान थी। इसी कारण ही पद वंशानुक्रमिक होने पर भी पौरजानपद (पुर व जनपद की जनता की प्रतिनिधि संस्था) द्वारा उसका निर्वाचन होता था। शासन के कार्यों में जनता का सहयोग था। रामायणकालीन शासन का संचालन धर्म एवं नैतिक नियमों द्वारा होता था। उस समय राजनीति का आधार ही धर्म था। चारों वर्णों का धर्म एवं नीति के अनुसार पालन कराना राजा एवं शासक वर्ग का परम कर्त्तव्य था। राजा प्रजा के पालन में धर्म की दुहाई देता था। इस प्रकार रामायण कालीन राजनीति में धर्म आधारित नैतिक गुणों का महत्त्व पूर्ण स्थान था। रामायण कालीन राजनीति संवैधानिक राजतन्त्र की संरक्षक थी। रामायणकालीन राजनीति में राजा की स्वेच्छाचारिता का व्यवहार एवं सिद्धान्त दोनों ही रूपों में मान्यता न थी।

निष्कर्ष

रामायण कालीन राजनीति में विधिक की प्रधानता, उदार न्याय, आध्यात्मिक प्रवृत्ति एवं नैतिक उत्कर्ष तथा लोक हिताय नैतिक नियम प्रधान रूप से सम्मिलित थे इसीलिये तत्कालीन राजनीति सजीव थी एवं समाज को अव्यवस्था से बचाने में पूर्ण रूप से सक्षम थी। वस्तुतः नैतिक गुणों से रहित राजनीति जीवन रहित हो जाती है एवं राजनीति के जीवन रहित हो जाने से समस्त धर्म (समष्टि धर्म तथा व्यक्तिगत धर्म आधार) नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार राज्य में धर्म एवं नैतिकता ही प्रमुख बिन्दु हैं जिनके आधार पर शासन, समाज एवं संस्कृति की स्थिरता एवं समृद्धि सम्भव है। रामायणकालीन राजनीति का आधार धर्म एवं नैतिक गुण थे। उसके मुख्य उद्देश्य थे– अन्याय और अनीति का नाश, नीति का उत्थान और मानवता का संवर्धन। इसी कारण वह राज्य की स्थिरता एवं उन्नति का मूल आधार मानी जाती थी। आज के समय में यदि हम देश में सुव्यवस्था और शांति स्थापित करना चाहते हैं; तो रामायणकालीन राजनैतिक गुणों की निरन्तरता और प्रगति को सुनिश्चित करना पड़ेगा। जनता की भौतिक और नैतिक प्रगति के साथ समग्र विकास चाहते हैं तो सत्य, सदाचार, कर्तव्यनिष्ठा, अनुशासन, संयम, समता, सौहार्द इत्यादि नैतिक गुणों को अपना कर रामायणकालीन राजनीति के सिद्धांतों का अवलंबन करना चाहिए।

सन्दर्भ सूची

1. वाल्मीकि रामायण (2/67/8–32)
2. वही (1/71)
3. वही (1/70)
4. वही (1/1/2 –4, 13–18)
5. वही (2/2/26–54)
6. वही (3/40/9 – 10)
7. वही (6/4/22)
8. वही (3/41/7)
9. वही (6/6/5)
10. वही (2/100/16)
11. वही (1/7/2)
12. वही (2/54/14)
13. वही (2/26/14)
14. वही (2/79/12)
15. वही (1/510; 6/3/20 ; 6/28/30)
16. वही (1/5/10; 6/3/11)
17. वही (6/3/12–13)
18. वही (6/3/12)
19. वही (4/14/5)
20. वही (2/100/54)
21. वही (1/5/15; 5/9/14; 5/43/13)
22. वही (2/75/24; 3/6/11; 7/74/31)
23. वही (1/5/14)
24. वही (2/82/8; 7/38/12)
25. वही (2/14/46; 7/39/8)
26. वही (2/100/46 – 48)
27. वही (2/100/33, 46, 47, 48, 54, 55)
28. वही (2/100/54)
29. वही (4/18/31)
30. वही (2/38/33)
31. वही (6/57/21)

****